

# स्वदेशी चिकित्सा

दिनचर्या - ऋतुचर्या  
के आधार पर



महान आयुर्वेद विशेषज्ञ :  
श्री चागभट्ट द्वारा रचित अष्टांगहृदयम् पर आधारित



भाग - 1

संकलन एवं संपादन

राजीव दीक्षित

पुनर्लेखन : प्रदीप वीक्षित

भाई राजीव दीक्षित - पुस्तक संग्रह ④

# राजीव भाई के व्याख्यानोँ पर आधारित साहित्य

## शीर्षक

स्वदेशी चिकित्सा  
किताबों के सेट में  
इनके अलावा 3 अन्य  
किताबें भी हैं।

## मूल्य

1. स्वदेशी चिकित्सा, भाग - 1 रु. - 50/-
2. स्वदेशी चिकित्सा, भाग - 2 रु. - 50/-
3. स्वदेशी चिकित्सा, भाग - 3 रु. - 50/-
4. बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा भारत की लूट रु. - 50/-
5. सरकारों ने दिया है देश को लूटने का लाइसेंस रु. - 50/-
6. बहुराष्ट्रीय कंपनियों का असली चेहरा रु. - 50/-
7. मांसाहार से हानियाँ रु. - 60/-
8. WTO : भारत को गुलाम बनाने का संविधान रु. - 50/-
9. गाय और पंचगव्य द्वारा धरेलू इलाज रु. - 50/-
10. गाय और स्वदेशी कृषि रु. - 50/-
11. स्वदेशी भारत को पुनः सोने की चिड़िया बनाने का पंथ रु. - 50/-
12. भारत की पुनर्योजना : स्वदेशी के आधार पर रु. - 50/-
13. भारत स्वाभिमान शंखनाद पर आधारित 10 किताबों का सेट रु. - 50/-
14. स्वदेशी भारत की रूपरेखा रु. - 50/-
15. भारत और पश्चिमी सभ्यता का अन्तर रु. - 50/-
16. स्वदेशी चिकित्सा, भाग - 4 रु. - 50/-



राजीव भाई द्वारा दिये गये व्याखान (MP3)



हमारा संकल्प:

5 करोड़ घरों में राजीव भाई की आवाज पहुँचाना-साथी हाथ बढ़ाना

# स्वदेशी चिकित्सा

(महान आयुर्वेद विशेषज्ञ : श्री वाग्भट्ट  
द्वारा रचित अष्टांगहृदयम् पर आधारित)

भाग-1

संकलन एवं संपादन  
राजीव दीक्षित

स्वदेशी प्रकाशन,  
सेवाग्राम, वर्धा

# स्वदेशी चिकित्सा

लेखक : राजीव दीक्षित

प्रकाशक : स्वदेशी प्रकाशन

सर्वाधिकार प्रकाशक के पास सुरक्षित

प्रथम संस्करण : 2012 (3000 प्रतियाँ)

स्वदेशी प्रकाशन, सेवाग्राम, वर्धा द्वारा  
स्वदेशी भारत पीठम (ट्रस्ट) के लिए प्रकाशित

स्वदेशी भारत पीठम (ट्रस्ट)  
सेवाग्राम रोड, हुत्तामा स्मारक के पास  
सेवाग्राम, वर्धा - 442 102  
फोन नं.- 07152-284014  
मोबाईल : 9822520113, 9422140731

सहयोग राशि : 50 रुपये

## विषय सूची

प्रस्तावना	4
प्रथम अध्याय – आयुर्वेद के बारे में	5–13
द्वितीय अध्याय – दिनचर्या	14–24
तृतीय अध्याय – ऋतुचर्या	25–41
चतुर्थ अध्याय – रोगों की उत्पत्ति के कारण	42–52
पाँचवा अध्याय – आहार द्रव्यों का ज्ञान	53–81
छँठवा अध्याय – अन्न द्रव्यों का ज्ञान	82–128

## प्रस्तावना

भारत में जिस शास्त्र की मदद से निरोगी होकर जीवन व्यतीत करने का ज्ञान मिलता है उसे आयुर्वेद कहते हैं। आयुर्वेद में निरोगी होकर जीवन व्यतीत करना ही धर्म माना गया है। रोगी होकर लम्बी आयु को प्राप्त करना या निरोगी होकर कम आयु को प्राप्त करना दोनों ही आयुर्वेद में मान्य नहीं हैं। इसलिये जो भी नागरिक अपने जीवन को निरोगी रखकर लम्बी आयु चाहते हैं, उन सभी को आयुर्वेद के ज्ञान को अपने जीवन में धारण करना चाहिए। निरोगी जीवन के बिना किसी को भी धन की प्राप्ति, सुख की प्राप्ति, धर्म की प्राप्ति नहीं हो सकती है। रोगी व्यक्ति किसी भी तरह का सुख प्राप्त नहीं कर सकता है। रोगी व्यक्ति कोई भी कार्य करके ठीक से धन भी नहीं कमा सकता है। हमारा स्वस्थ शरीर ही सभी तरह के ज्ञान को प्राप्त कर सकता है। शरीर के नष्ट हो जाने पर संसार की सभी वस्तुयें बेकार हैं। यदि स्वस्थ शरीर है तो सभी प्रकार के सुखों का आनन्द लिया जा सकता है। दुनिया में आयुर्वेद ही एक मात्र शास्त्र या चिकित्सा पद्धति है जो मनुष्य को निरोगी जीवन देने की गारंटी देता है। बाकी अन्य सभी चिकित्सा पद्धतियों में “पहले बीमार बनें फिर आपका इलाज किया जायेगा”, लेकिन गारंटी कुछ भी नहीं है। आयुर्वेद एक शाश्वत एवं सातत्य वाला शास्त्र है। इसकी उत्पत्ति सृष्टि के रचियता श्री ब्रह्माजी के द्वारा हुई ऐसा कहा जाता है। ब्रह्माजी ने आयुर्वेद का ज्ञान दक्ष प्रजापति को दिया। श्री दक्ष प्रजापति ने यह ज्ञान अश्विनी कुमारों को दिया। उसके बाद यह ज्ञान देवताओं के राजा इन्द्र के पास पहुँचा। देवराजा इन्द्र ने इस ज्ञान को ऋषियों—मुनियों जैसे आत्रेय, पुत्रर्वसु आदि को दिया। उसके बाद यह ज्ञान पृथ्वी पर फैलता चला गया। इस ज्ञान को पृथ्वी पर फैलाने वाले अनेक महान ऋषि एवं वैद्य हुये हैं। जो समय—समय पर आते रहे और लोगों को यह ज्ञान देते रहे हैं। जैसे चरक ऋषि, सुश्रुत, आत्रेय ऋषि, पुनर्वसु ऋषि, काश्यप ऋषि आदि—आदि। इसी श्रृंखला में एक महान ऋषि हुये वाग्भट्ट ऋषि जिन्होंने आयुर्वेद के ज्ञान को लोगों तक पहुँचाने के लिये एक शास्त्र की रचना की, जिसका नाम “अष्टांग हृदयम्”।

इस अष्टांग हृदयम् शास्त्र में लगभग 7000 श्लोक दिये गये हैं। ये श्लोक मनुष्य जीवन को पूरी तरह निरोगी बनाने के लिये हैं। प्रस्तुत पुस्तक में कुछ श्लोक, हिन्दी अनुवाद के साथ दिये जा रहे हैं। इन श्लोकों का सामान्य जीवन में अधिक से अधिक उपयोग हो सके इसके लिये विश्लेषण भी सरल भाषा में देने की कोशिश की गयी है।



# प्रथम अध्याय

## आयुर्वेद के बारे में

वायु पित्तं कफश्चेति त्रयो समासतः

विकृता ऽ विकृता देहं घ्नन्ति ते वर्त्तयन्ति च ।

ते व्यापिनो ऽपि ह्यन्नाभ्योरघोमध्योह र्वसश्रयाः ॥

**अर्थ** : वात, पित्त एवं कफ ये तीन दोष शरीर में जाने जाते हैं। ये दोष यदि विकृत हो जायें तो शरीर को हानि पहुंचाते हैं, और मृत्यु का कारण बन जाते हैं। यदि ये वात, पित्त एवं कफ सामान्य रूप से सन्तुलन में रहें तो शरीर की सभी क्रियाओं का संचालन करते हुये शरीर का पोषण करते हैं यद्यपि ये वात, पित्त, कफ शरीर के सभी भागों में रहते हैं, लेकिन विशेष रूप से वात नाभि के नीचे वाले भाग में, पित्त नाभि और हृदय के बीच में, कफ हृदय से ऊपर वाले भाग में रहता है।

वयो ऽ होरात्रिभुक्तानां तेडन्तमध्यादिगाः क्रमात् ।

**अर्थ** : आयु के अन्त में अर्थात् वृद्धावस्था में वायु (वात) का प्रकोप होता है। युवा अवस्था में पित्त का असर होता है। बाल्य अवस्था में कफ का असर होता है। इसी तरह दिन के प्रथम पहर अर्थात् सुबह के समय कफ का प्रभाव होता है। दिन के मध्य में पित्त का प्रभाव होता है। दिन के अन्त में वात का प्रभाव होता है। सुबह कफ, दोपहर को पित्त और शाम को वात (वायु) का असर होता है।

**विश्लेषण** : जब व्यक्ति बाल्य अवस्था में होता है, उस समय कफ की प्रधानता होती है। बचपन में मुख्य भोजन दूध होता है। बालक को अधिक चलना-फिरना नहीं होता है। बाल्य अवस्था में किसी भी तरह की चिन्ता नहीं होती है। अतः शरीर में स्निग्ध, शीत जैसे गुणों से युक्त कफ अधिक बनता है। युवा अवस्था में शरीर में धातुओं का बनना अधिक होता है, साथ ही रक्त का निर्माण अधिक होता है। रक्त का निर्माण करने में पित्त की सबसे बड़ी भूमिका होती है। युवा अवस्था में शारिरिक व्यायाम भी अधिक होता है। इसी कारण भूख भी अधिक लगती है। ऐसी स्थिति में पित्त की अधिकता रहती है। युवा अवस्था में पित्त का बढ़ना बहुत जरूरी होता है। यदि पित्त ना बढ़े

तो शरीर में रक्त की कमी हो जायेगी और शरीर को पुष्ट करने वाली धातुओं का भी निर्माण नहीं होगा। पित्त के गुण हैं— तीक्ष्ण, उष्ण।

वृद्धा अवस्था में शरीर क्षय होने लगता है। सभी धातुयें शरीर में कम होती जाती है। शरीर में रूक्षता बढ़ जाती है। ऐसी स्थिति में शरीर में वायु (वात) का प्रभाव बढ़ जाता है। वायु का गुण रूक्ष एवं गति है।

समय विभाजन के अनुसार दिन के प्रथम प्रहर में शीत या ठंड की अधिकता होती है। इसके कारण शरीर में थोड़ा भारीपन होता है। इसी कारण कफ में वृद्धि होती है। दिन के दूसरे प्रहर में और मध्यकाल में सूर्य की किरणें काफी तेज हो जाती हैं। गर्मी बढ़ जाती है। इस समय पित्त अधिक हो जाता है। अतः दिन के दूसरे प्रहर एवं मध्यकाल में पित्त प्रबल होता है। दिन के तीसरे प्रहर और सांयकाल सूर्य किरणों के मन्द हो जाने के कारण वायु का प्रभाव बढ़ता है। इसी तरह रात्रि के प्रथम प्रहर में कफ की वृद्धि होती है। रात्रि के दूसरे प्रहर में वात (वायु) की वृद्धि होती है। चूंकि रात्रि के तीसरे प्रहर या अन्तिम प्रहर में वातावरण में भी शीतल वायु बहती है, अतः शरीर के इसी वायु के सम्पर्क में आ जाने से शरीर में भी वायु बढ़ जाती है।

इसी तरह खाने—पीने के समय का वात, पित्त, कफ के सात्त्विक मेल है। खाने को खाते समय कफ की मात्रा शरीर में अधिक होती है। खाने के बाद जब भोजन के पाचन की क्रिया शुरू होती है, उस समय पित्त की प्रधानता रहती है। भोजन में पाचन के बाद वायु की प्रधानता होती है। भोजन कफ के साथ ही मिलकर आमाशय में पहुँचता है। मुंह में बनने वाली लार क्षारीय होती है। आमाशय में जो स्त्राव होता है, वह अम्लीय है। अतः भोजन को खाते समय लार भोजन के साथ मिलकर आमाशय में पहुँचती है, जहाँ उसमें अम्ल मिलता है। अम्ल और क्षार के संयोग से भोजन मधुर (मृदु) होता है। भोजन के मधुर होने से ही आमाशय में कफ की वृद्धि होती है। भोजन जब आमाशय से आगे चलता है तो फिर पित्त की क्रिया शुरू होती है। इस पित्त के बढ़ने से अग्नि प्रदीप्त होती है, जो भोजन को जलाकर रस में बदल देती है। भोजन के रस में बदल जाने के बाद ही इसमें से मांस, मज्जा, रक्त, वीर्य, मल—मूत्र आदि बनते हैं और इस स्तर पर वायु की अधिकता होती है। इस वायु के कारण ही मल—मूत्र का शरीर से निकलना होता है। इस तरह शरीर में प्रतिदिन प्राकृतिक रूप से वात, पित्त, कफ में वृद्धि होती रहती है। यह प्राकृतिक वृद्धि ही शरीर की रक्षा करती है। इस प्राकृतिक तरीके से होने



वाली वात, पित्त, कफ की वृद्धि शरीर में बाधा उत्पन्न नहीं करती है, बल्कि शरीर की क्रियाओं में मदद रूप होती है। इसके विपरीत जब गलत आहार-विहार के कारण वात, पित्त, कफ में वृद्धि होती है, तब शरीर को हानि होती है और बीमारियाँ होती जाती हैं।

**तैर्भवेद्विषमस्तीक्ष्णो मन्दश्रवाग्निः समैःसम।**

**अर्थ :** यदि शरीर में वात आदि दोषों की प्रधानता होती है तो उसका जठराग्नि पर प्रभाव पड़ता है। यदि वायु विषमगति हो जाये तो, पाचन क्रिया कभी नियमित और कभी अनियमित हो जाती है। पित्त अपने तीक्ष्ण गुणों के कारण अग्नि को तीव्र कर खाये हुये आहार को समय से पहले ही पचा देता है। कफ अपने मृदु गुण के कारण अग्नि को मृदु बनाकर उचित मात्रा में खाये हुये आहार का सम्यक् पाचन नियमित समय में नहीं कर पाता है। यदि वात, पित्त और कफ तीनों समान मात्रा में रहें तो उचित मात्रा में खाये हुये आहार का निश्चित समय से पाचन हो जाता है।

**कोष्ठः क्रूरो मदुर्मध्यो मध्यः स्यात्तैः समैरपि।**

**अर्थ :** वात की वृद्धि से मलाशय पर प्रभाव पड़ता है। मलद्वार में क्रूरता बढ़ती है। इससे मलत्याग देरी से होता है। पित्त की वृद्धि से मलाशय मृदु होता है। कफ की वृद्धि से यही मलाशय मध्ये होता है। यदि वात, पित्त कफ समान हैं, तो मलाशय एवं मलद्वार मध्य होता है।

**विश्लेषण :** यदि कोई व्यक्ति वात प्रकृति का है या उसको पेट में वायु का प्रभाव बढ़ गया है तो उसका कोष्ठ क्रूर होगा। अर्थात् उस व्यक्ति को मलत्याग देरी से होगा। इसी को कोष्ठवृद्धता भी कहते हैं। इसको ठीक करने के लिये औषधि की जरूरत होती है। ऐसी औषधि जो वात को कम करे और पित्त को बढ़ाये। जैसे ही पित्त बढ़ता है, वैसे ही कोष्ठ मृदु हो जाता है। कोष्ठ मृदु हो जाये तो मलत्याग आसान हो जाता है। मलत्याग आसान करने के लिये दूध, त्रिफलाचूर्ण बहुत अच्छी औषधियाँ हैं। मलत्याग करना सबसे अधिक आसान तभी होता है, जब वात, पित्त, कफ समान हों या सम हों।

**शुक्रार्त्तवस्थैर्जन्मादो विषेनेव विषक्रिमेः॥**

**तैश्व त्रिस्त्रः प्रकृतयो हीनमध्योत्तमाः प्रथक्।**

**समघातुः समस्तासु श्रेष्ठा निन्दा द्विदोषज्ञाः॥**

**अर्थ :** गर्भ उत्पत्ति के समय, जन्म के प्रारम्भ काल में शुक्र और आव में जिन दोषों की अधिकता रहती है, उसी के अनुसार जन्म लेने वाले बालक की

प्रकृति बनती है। सबसे उत्तम प्रकृति मानी जाती है : वायु प्रकृति नहीं हों, पित्त प्रकृति मध्य हो और कफ प्रकृति हो ऐसे व्यक्ति उत्तम माने जाते हैं। दो प्रकृति को मिलाकर भी मनुष्य प्रकृतियाँ बनती हैं। जैसे वात एवं पित्त को मिलाकर वात पित्त प्रकृति बनती है। इसी तरह वात और कफ को मिलाकर वातकफज प्रकृति बनती है। पित्त और कफ को मिलाकर पित्तकफज प्रकृति बनती है। सबसे अच्छी प्रकृति के मनुष्य वे होते हैं, जिनके शरीर में वात, पित्त और कफ तीनों सम होते हैं।

**विश्लेषण :** आयुर्वेद में तीनों दोषों में साम्यता को स्वस्थ होने का आधार माना है। अर्थात् जिसमें वात, पित्त, कफ तीनों दोषोंकी समानता है, वह स्वस्थ है। इन तीनों दोषों को मिलाकर 7 अन्य प्रकृतियाँ बनती हैं। ये अन्य 7 प्रकृतियाँ रोगों का अधिक कारण बनती हैं। बचपन से ही जिसकी वात प्रकृति है, उसे ऐसे खान-पान से बचना चाहिए तो वायु को बढ़ाता हो। इसी तरह जिसकी पित्त प्रकृति बचपन से है, उसे ऐसे खान-पान से बचना चाहिए, जो पित्त को बढ़ाता हो। यदि किसी की बचपन से कफ प्रकृति है तो उसे ऐसे खान-पान से बचना चाहिए जो कफ को बढ़ावा देता हो। वात प्रकृति के व्यक्ति को सूखे वातावरण से और ठण्डे स्थानों से बचना चाहिए। पित्त प्रकृति के व्यक्ति को गरम तासीर की वस्तुओं के खान-पान से बचना चाहिए। कफ प्रकृति वालों को भारी और चिकनाई युक्त वस्तुओं के खान पान से बचना चाहिए।

**तत्र रुक्षो लघुः शीतः खरः सूक्ष्मश्रलोडनिलः**

**अर्थ :** वायु रुक्ष (सूखी), लघु, शीत (ठण्डी), खर, सूक्ष्म और हमेशा चलायमान गुण वाली होती है।

**विश्लेषण :** वायु वास्तव में शीतल (ठण्डी) नहीं होती है। लेकिन जब वायु ठण्डे द्रव्यों के साथ संयोग करे तो शीतल हो जाती है। जैसे पहाड़ों पर बर्फ पड़ने के बाद वहाँ से चलने वाली वायु शीतल हो जाती है। इसी तरह यदि गर्म वातावरण है या सूर्य प्रकाश अधिक है तो वायु गर्म होकर चलती है। इसलिये शीत ऋतु में वायु हमेशा ठण्डी चलती है और ग्रीष्म ऋतु में वायु हमेशा गर्म चलती है। वायु में अपना शीत और गर्म गुण प्रत्यक्ष नहीं होता है। प्रत्यक्ष रूप से वायु जिसके सम्पर्क में आती है, वही गुण धारण कर लेती है। यदि कोई व्यक्ति ठण्डे स्थान में निवास करता है तो वायु (वात) बढ़ती है। इसी तरह यदि कोई व्यक्ति शीत द्रव्यों का सेवन करता है तो भी वायु बढ़ती है। तीव्र वायु में बैठने से शरीर की धातुओं में कमी आती है, इससे शरीर में रुक्षता (रूखापन) आता है। वायु के प्रभाव से शरीर में खारापन भी आता है।

वायु अति सूक्ष्म है जो किसी भी छोटे-से-छोटे स्थान में भी प्रवेश कर जाती है। वायु चलायमान है, इसलिये कभी स्थिर नहीं रहती है।

**पित्तं सस्नेहतीक्ष्णोष्णं लघु विस्त्रं सरं द्रवम्**

**अर्थ :** पित्त के गुण — ईषत् स्निग्ध, तीक्ष्ण, उष्ण (गर्मी), लघु, विस्त्र (जलने से पूर्व मृतशरीर की तरह गन्ध वाला), सर (चलने वाला), द्रव (पतला) जैसा पित्त होता है।

**स्निग्धः शीतोगुरुर्मन्दः श्लक्ष्णो मृत्स्नः स्थिरः कफः।**

**अर्थ :** कफ के गुण — स्निग्ध (चिकनाईयुक्त), शीतल, गुरुमन्द (अल्प या कम चलने वाला), श्लक्ष्ण (खारापन के साथ चिकना), मृत्स्न (मिट्टी की तरह गन्ध वाला) और स्थिर होता है।

**विश्लेषण :** पित्त को बनने में अग्नि और जल की प्रधानता होती है। इसलिये पित्त को आग्नेय माना जाता है। कफ के निर्माण में पृथ्वी और जल की प्रधानता होती है। अतः पृथ्वी, जल, अग्नि आदि के सभी गुण इन दोषों में आते हैं। इसी तरह वात के निर्माण में वायु की प्रधानता होती है।

**रसासृज्यांसमेदोऽस्थिमज्जशुक्राणि धातवः।**

**सप्त दूष्याः—मला मूत्रशकृत्स्वेदादयोऽपिच।।**

**अर्थ :** धातुओं के प्रकार — रस, रक्त, मांस, मेदा, मज्जा, अस्थि, शुक्र आदि सात धातुयें होती हैं। ये सभी सात धातुयें शरीर में धारण होती हैं। वात, पित्त और कफ आदि दोषों द्वारा ये ही सात धातुयें दूषित होती हैं। मल, मूत्र और पसीना (स्वेद) ये तीनों शरीर को मलिन करते हैं। इसलिये इन्हें मल कहा जाता है। तीनों दोषों द्वारा भी ये दूषित होते हैं, इसलिये इन्हें भी दूष्य कहते हैं।

**विश्लेषण :** शरीर के मूल धारक ये तीनों दोष, धातुयें और मल (पसीना, मूत्र, विष्टा) ही हैं। आयुर्वेद में तीनों दोष, सात धातुयें और तीनों मलों को महत्वपूर्ण माना जाता है। इनमें से किसी एक में भी असंतुलन या विकृति पैदा हो जाये तो स्वस्थ रहना मुश्किल होता है। सात धातु और तीन मलों को मिलाकर इस दूष्य (जिन्हें दूषित किया जाता है) कहलाते हैं। वात, पित्त, कफ ये तीन दोष हैं जो दूषित करते हैं। सात धातुओं के सम्यक पाचन से ही मलों की उत्पत्ति होती है। ये धातुयें ही मलों की जनक और मुख्य हैं। सभी धातुओं में जो दूषित पदार्थ होते हैं, उन्हें बाहर निकालना ही मलों का काम है। यदि शरीर से इन मलों का निष्कासन नहीं हो तो ये मल बहुत हानिकारक हो जाते हैं और शरीर को नष्ट कर देते हैं।

**books.ringaal.com**

Visit us for more books